



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2017; 3(6): 598-600
 www.allresearchjournal.com
 Received: 19-04-2017
 Accepted: 20-05-2017

संदीप यादव

पीएच.डी. (हिंदी विभाग)
 दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
 भारत

आलोचना की संस्कृति

संदीप यादव

प्रस्तावना

जीवन के समग्र विकास के लिए आलोचना अनिवार्य है। आलोचना विहीन समाज में परिवर्तन की संभावना कम रहती है। युग दृष्टि के साथ-साथ आलोचना की संस्कृति भी परिवर्तनशील रही है। समय सापेक्ष नये मूल्य निर्धारण करना आलोचना का दायित्व है। "आलोचना की संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी है कि आलोचना नये साहित्य के साथ ऐतिहासिक मूल्यांकन के नये मानदण्ड विकसित करें। जीवन के नये साहित्य के मूल्यांकन के लिए पुराने मानदण्डों का उपयोग न करें।"¹ वस्तुतः आलोचना की संस्कृति का एक ऐतिहासिक विकास क्रम है, जो समय सापेक्ष अपनी दिशा समाज के अनुसार बदलती रही है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार, "आलोचना शब्द 'लोच' धातु से बना है। 'लोच' या 'लोच' का अर्थ है— देखना। इसलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या उसका मूल्यांकन आदि करना आलोचना है।"² वस्तुतः आलोचना किसी कृति का विश्लेषण ही नहीं वरन् उस जीवन मर्म की खोज है जो रचना का मूल रूप है। आलोचना एक दृष्टि है जिससे पाठक रचना के मूल उत्स तक पहुँच सके। आलोचा की संस्कृति के विषय में रमेश कुन्तक मेघ लिखते हैं कि, "आलोचिन्तना ही रचना को केवल इतिहास में ही संस्थित नहीं करती बल्कि संस्कृति का ताना-बाना भी बना देती है। इसलिए किसी साहित्य का इतिहास 'आलोचिन्तना' और विशिष्ट इतिहास दर्शन द्वारा इतिहास— आलेखकारी (हिस्टोरियोग्राफी) से पफलीभूत होता है।"³ साहित्य के आलोचनात्मक संस्कृति के विकास को ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जा सकता है। लेखक एक सामाजिक प्राणी है। परिवेश का रचनाकार पर प्रभाव रहता है। इस तरह से भिन्न-भिन्न अवसरों पर रचनाकार का दायित्व भी जीवन के अनेक क्षेत्र से जुड़ा रहता है। रचनाकार युग दृष्टि से प्रभावित रहता है तो आलोचना भी युग के क्रमिक विकास की उपज है। इस तरह से आलोचना की संस्कृति को देखा जा सकता है।

भक्तिकाल साहित्य के संदर्भ में कबीर के साहित्य को देखा जाय तो वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुढ़ियों का खण्डन करते दिखाई देते हैं। कबीर रचना के माध्यम से आलोचना का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। कबीर के समय आलोचना का रूप नहीं था। निन्दक व प्रशंसनीय रूप से समाज को देख रहे थे। भारतेन्दु युग से कई विधाओं का सूत्रपात हुआ। आलोचना भी इनमें से एक है। "भारतेन्दु का पूर्ववर्ती काव्य साहित्य सन्तों की कुटिया से निकलकर राजाओं और रईसों के दरबार में पहुँच गया था। उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकालकर लोकजीवन के सामने कर दिया।"⁴ भारतेन्दु युगीन साहित्य समाज के पुराने रूप से निकलकर समाज सुधार के रूप में आगे बढ़ता है। भारतेन्दु की दृष्टि सामाजिक चेतना के रूप में उभरती है। "भारतेन्दु युग के जिन साहित्यकारों के द्वारा नई आलोचना का सूत्रपात हुआ उनमें प्रायः सभी मुख्यतः सर्जक साहित्यकार थे।"⁵ भारतेन्दु के कार्य को पं. बालकृष्ण भट्ट एवं प्रेमघन ने आगे बढ़ाया। इस युग में आलोचना की संस्कृति का विकास पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। पत्रकारिता के माध्यम से इस दौर की आलोचनात्मक संस्कृति विकास करती है। भारतेन्दुयुग के रचनाकारों में सहृदयता का पुट है तो द्विवेदी युग युगीन साहित्यकारों ने कर्तव्य पालन को चरितार्थ किया है। "द्विवेदी युग ने ज्ञान की साधना पर विशेष बल दिया। इस युग के लेखक प्राचीन भारत के ज्ञान-विज्ञान की खोज और पश्चिम के नये आलोक से अपने देशवासियों को परिचित कराना चाहते थे।"⁶ महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से कवियों का मार्ग प्रशस्त करते हैं। "आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रहे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो सके।"⁷ वस्तुतः महावीर प्रसाद द्विवेदी कविता की संक्रान्ति की अवस्था को तोड़कर जन-साधारण तक कविता की संस्कृति को पहुँचाने पर बल दिया है।

Correspondence

संदीप यादव

पीएच.डी. (हिंदी विभाग)
 दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
 भारत

द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचक मिश्रबन्धु, एवं पद्मसिंह शर्मा हैं। आलोचना की संस्कृति का तुलनात्मक रूप द्विवेदी युग से ही प्रारम्भ होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचना को लोकमंगल की अवधारणा से जोड़ते हैं। उन्होंने लोकजीवन के समग्र रूप का प्रतिपादन तो नहीं किया बल्कि साहित्य को मानवीय आधार पर स्थापित किया। विश्वनाथ त्रिपाठी हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास में लिखते हैं कि, “आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक विश्वसनीय आलोचक हैं। उन्होंने हिन्दी आलोचना को गुण-दोष कथन की रूढ़ियों से उठाकर उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर प्रदान किया।”⁸ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया। शुक्ल जी ने आलोचना की संस्कृति को वैज्ञानिकता प्रदान की। उनके चिन्तन में वस्तुनिष्ठता मिलती है। उन्होंने साहित्य को देखने की नई दृष्टि प्रदान की है। निर्मला जैन के शब्दों में, “आचार्य शुक्ल के हाथों में वस्तुतः हिन्दी की एक निजी प्रौढ़ आलोचना शैली का विकास हो चुका था। यह शैली पश्चिम के कलावाद और हिन्दी के मध्ययुगीन अलंकार रीतिवाद से भिन्न हिन्दी की अपनी ठेठ आलोचना शैली थी।”⁹ वस्तुतः आचार्य शुक्ल आलोचना की संस्कृति को प्रौढ़ता प्रदान किया है। उन्होंने लोकमंगल, लोकजीवन, साधारणीकरण एवं रस सिद्धांत आदि के माध्यम से आलोचना की संस्कृति को लोकप्रिय बनाया है।

खगेन्द्र ठाकुर आलोचना और संस्कृति नामक शीर्षक से हजारी प्रसाद द्विवेदी के संबंध में कहते हैं कि “आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन बोध से मुक्ति की राह दिखाई देते हैं तो अवश्य हमें सांस्कृतिक विकास की राह दिखा रहे होते हैं। मध्यकालीन भक्ति काव्य का विश्लेषण करे हुए जब वे हमें भक्ति आन्दोलन की प्रगतिशीलता के पीछे आम जनता के आधार का ज्ञान देते हैं, तब भी वे जनता की आकांक्षाओं पर आधारित संस्कृति का परिचय करा रहे होते हैं।”¹⁰ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कई मान्यताओं का खण्डन करते हैं। द्विवेदी जी रचना का अध्ययन के लिए रचनाकार के जीवन परिवेश के अध्ययन को आवश्यक मानते हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में, “वे किसी कृति की आलोचना उसके ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में देखने के पक्षधर हैं।”¹¹ वस्तुतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य चिन्तन को ऐतिहासिक व सामाजिक दृष्टि से देखते हैं। रचनाकार का व्यक्तित्व देशकाल की उपज है। अतः रचना में उसकी छाप पड़ती है। रचना को इससे अलग करके नहीं देखा जा सकता। इस तरह से द्विवेदी जी के यहां आलोचना की संस्कृति का विस्तार देखने को मिलता है

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी चिन्तन का रूप छायावादी कवियों के विचारों में मिलता है। किन्तु छायावादी कवियों के विचार आलोचना की दृष्टि से गहराई लिए हुए नहीं हैं। छायावादी कवियों के काव्य में स्वानुभूति का प्रबल वेग है। डॉ. महेश तिवारी के शब्दों में, “छायावादी कवियों में प्रसाद एक मात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने पश्चिमी दर्शन और पश्चिमी साहित्य से प्रभाव ग्रहण न करते हुए अपने काव्य संबंधी विचारों को विशुद्धतः भारतीय साहित्य और भारतीय दर्शन की पीठिका ही है।”¹² स्वच्छन्दता साहित्य कला व बौद्धिक रूप से एक आन्दोलन था। इसकी शुरुआत अट्टारहवीं शताब्दी के अन्त में होती है। भारतीय साहित्य पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में इसके प्रवर्तक का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल श्रीधर पाठक को देते हैं। डॉ. अमरनाथ हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली में लिखते हैं कि, “स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव भारत में सर्वप्रथम बांग्ला साहित्य पर पड़ा। वहां से हिन्दी में यह प्रवृत्ति 20वीं सदी के दूसरे दशक में आयी और छायावादी काव्य आन्दोलन के रूप में विकसित हुई।”¹³ स्वच्छन्दतावादी कविता हिन्दी साहित्य में मुक्त गगन में विचरण करती है। कल्पना एवं दुख की प्रबलता के

कारण संकुचित नजर आता है। यहाँ आत्माभिव्यक्ति की प्रबलता को महत्त्वपूर्ण आयाम मिलता है।

प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम सम्मेलन 1936 ई. में लखनऊ में हुआ। प्रेमचन्द्र की अध्यक्षता में जैनेन्द्र इसमें शामिल हुए। इस सम्मेलन में मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात आदि के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। “प्रेमचन्द्र ने साहित्यकार को स्वभावतः प्रगतिशील बताया तो इस प्रगतिशीलता का लक्षण भी बताया। वे अप्रिय अवस्थाओं का अन्त कर देना चाहते थे।”¹⁴ प्रगतिशील आलोचना संस्कृति को रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, प्रकाशचन्द्र गुप्ता, आदि ने उत्कर्ष पर पहुँचा है। प्रगतिशील लेखक संघ ने परम्परा एवं रूढ़ियों का विरोध किया। इस दौर में साहित्य जन-जीवन से जुड़ गया था। साहित्य दबे, कुचले एवं सर्वहारा का प्रतीक बनने लगा। अतः आलोचना की संस्कृति में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आया। रेखा अवस्थी के शब्दों में, “प्रगतिशील लेखक संघ के अन्दर इस प्रकार के विषय पर निश्चित रूप से दो धाराओं का संघर्ष था। इस प्रकार का रुझान परम्परा भंजन के नकारवाद की ओर था, दूसरे प्रकार का रुझान यह था कि अपनी जातीय परम्परा, विरासत और संस्कृति का द्वन्द्वत्मक ढंग से मूल्यांकन किया जाय और मृत और जीवन्त उपादानों को स्वीकार किया जाय।”¹⁵ वस्तुतः प्रगतिशील आलोचना की संस्कृति सर्वहारा को केन्द्र में रखती है। वे अपनी परम्परा में पड़ने वाले रूढ़ियों के बजाय जीवन्त संस्कृति पर बल देते हैं। साहित्य एवं आलोचना के केन्द्र में जन जीवन का साहित्य है। जीवन के यथार्थ रूप का अंकन इसका मुख्य उद्देश्य है। मुक्तिबोध व्यवहारिक आलोचना से लेकर कलाकृति की रचना प्रक्रिया की सैद्धांतिक रूपरेखा का वर्णन करते हैं। मुक्तिबोध काव्य-रचना के तीन क्षण का उल्लेख करते हैं। कला का प्रथम क्षण है- जीवन का तीव्र अनुभव। दूसरे में फैंटेसी के रूप का वर्णन करते हैं। तीसरे क्षण में फैंटेसी के शब्दबद्ध रूप की यथास्थित को प्रस्तुत किया है। इन तीनों क्षण में तीसरा क्षण सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह भाषा एवं रचना प्रक्रिया को प्रबल करता है। इस तरह से मुक्तिबोध ने आलोचना की संस्कृति को फैंटेसी के रूप में चित्रित किया है। प्रगतिशील आलोचना संस्कृति को नामवर सिंह ने विशेष रूचि के साथ आगे बढ़ाया। “हिन्दी के आधुनिक आलोचकों में नामवर सिंह का स्थान इस दृष्टि से विशिष्ट है कि वे समाजवादी जीवन-दृष्टि और नयी कविता की भाव-भूमि के समवेत् बोध को लेकर आलोचना में प्रवृत्त हुए।”¹⁶ नामवर सिंह ने कविता के नये प्रतिमान में प्रतिमानों की प्रासंगिकता और नई कविता के भावभूमि का जीवन्त रूप से वर्णन किया है। इस तरह से आलोचना की संस्कृति का एक ऐतिहासिक दस्तावेज मिलता है। जो अनेक युगों से गुजरते हुए नवीन आयामों को स्थापित करती है। इस संस्कृति में आलोचना सिर्फ आनन्द की खोज नहीं रही। जीवन के समग्र रूप में स्थापित हो चुकी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. ए अरविन्दाक्षन : आलोचना और संस्कृति, अकादमिक प्रतिभा दिल्ली, संस्करण 16, 2008।
2. सं. वर्मा, धीरेन्द्र : हिन्दी साहित्य कोश (भाग-एक), ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, संस्करण पृ. 95, 2011।
3. सं. ए अरविन्दाक्षन : आलोचना और संस्कृति, अकादमिक प्रतिभा दिल्ली, संस्करण, पृ. 16, 2008।
4. त्रिपाठी, विश्वनाथ : हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, बारवहीं आवृत्ति, पृ. 13, 2011।
5. वही, पृ. 13।
6. वही, पृ. 15।
7. वही, पृ. 25-26।
8. त्रिपाठी, विश्वनाथ : हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियन्टल ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण, पृ. 121, 2015।

9. जैन, निर्मला : हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पांचवीं आवृत्ति 2011, पृ. 38
10. ए अरविन्दाक्षन : आलोचना और संस्कृति, अकादमिक प्रतिभा दिल्ली, संस्करण 2008, पृ. 40
11. त्रिपाठी, विश्वनाथ : हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, बारवहीं आवृत्ति 2015, पृ. 40
12. तिवारी, डॉ. महेश : हिन्दी काव्य समीक्षा के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 61
13. डॉ. अमरनाथ : हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. 389
14. त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, बारहवीं आवृत्ति, 2011, पृ. 176
15. अवस्थी, रेखा : प्रगतिवाद एवं समानान्तर साहित्य, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. 278
16. जैन, निर्मला : हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 79